ISSN : xxxx-xxxx
Volume-1, Issues: 1, April-June, 2020

मातृत्व–पितृत्व : आध्यात्मिक उत्तरदायित्व

डॉ. रूपम बी. उपाध्याय

मददनीश अध्यापक (शिक्षा विभाग),

चिल्ड्रन्स युनिवर्सिटी, गांधीनगर

Email : rupambupadhyaya@gmail.com

Received : 20-04-2020 **Published Online : July, 2020** **Accepted : 15-05-2020**

प्रस्तावना

भारतीय जीवनदर्शन का मूलभूत आधार आध्यात्मिकता है । भारतीय जीवनव्यवस्था में चार पुरूषार्थ प्रमुख हैं – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष । धर्म को केन्द्र में रखकर अर्थ एवं काम की आराधना द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करना मनुष्य जीवन का अंतिम ध्येय है । जीवन के अंतिम ध्येय की प्राप्ति हेतु हमारे पूर्वजों ने मानवजीवन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है, जिसमें व्यक्ति के संतुलित विकास के लिए आयु की विभिन्न अवस्थाओं अनुसार आश्रमव्यवस्थाओं को वर्णित किया गया है – ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यस्ताश्रम । गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है । इस समयावधि में पुरुष एवं स्त्री द्वारा पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति करना आवश्यक है । गृहस्थाश्रम की अवस्था में प्रजनन की प्रक्रिया द्वारा ईश्वरीय चेतना का विस्तार करने के लिए समाज की आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करना मनुष्य का सबसे बडा उत्तरदायित्व है । प्रकृति में प्राणी एवं मनुष्यो में कामवासना का सहज अस्तित्व है । प्राकृतिक आवेगों के रूप में जिस प्रकार की कामवासना पशुओं में है वैसी ही कामवासना मनुष्य में भी है, परंतु मनुष्य द्वारा प्रजोत्पत्ति की क्रिया अन्य सजीवों जैसी ही है या अलग है ? इस लेख का उद्देश्य मनुष्य की प्रजोत्पत्ति के विभिन्न आयामों के संदर्भ में स्पष्टता प्राप्त करना है ।

प्रत्येक सजीव का व्यक्तित्व पंचकोशात्मक है – अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश एवं आनंदमयकोश । अन्नमयकोश एवं प्राणमयकोश के मध्य में इन्द्रियाँ स्थित होती है । प्राणियों में आवेग काम ऊर्जा के रूप में अन्नमयकोश से शुरू होकर प्राणमयकोश तक पहुंचता है । प्राणियों में इस ऊर्जा का अन्य तीन कोशों तक उर्ध्वीकरण नहीं होता है । प्राणियों में चेतना का स्तर निम्न होता है जिसके कारण मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश

Editors : *Dr. Prashant Patel, Dr. Nimish Vasoya*
Published by : Children's University, Gandhinagar

एवं आनंदमयकोश होने के बावजूद इस संदर्भ में जागरूकता का अभाव होता है एवं अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाते हैं, जब कि मनुष्य ईश्वर का श्रेष्ठ सर्जन है, जिसके कारण उसके पंचकोशात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसके चित्त की अवस्थाओं के अनुसार होती है । इसलिए मनुष्य केवल इन्द्रियों के आवेगों से प्रेरित होकर दैहिक क्रिया द्वारा संतान उत्पन्न करे वह ठीक नहीं है । गृहस्थाश्रम केवल कामवासनाओं का उपभोग करने के लिए है ? युगल का संतान प्राप्ति का उद्देश्य क्या है ? इन सभी बातों के संदर्भ में विचार करना आवश्यक है ।

मनुष्य प्रवर्तमान समय में श्रेष्ठ साधनों के आविष्कार द्वारा जीवन को श्रेष्ठतम रूप से बिताने के लिए निरंतर प्रयत्नरत है । श्रेष्ठ वस्तुओं के उपभोग की लालसा में प्राणियों की उत्तम नस्ल का उत्पादन करके आर्थिक लाभ उठा रहा है । विभिन्न पौधों की कलमों को दोगला (Hybrid) करके अच्छी किस्म के फूलों को प्राप्त करना, आम के वृक्षों की कलमो को दोगला करके अच्छे से अच्छे फल प्राप्त करना आदि के संदर्भ में मनुष्य चिंतन कर रहा है । बाजार में मिलने वाली किसी भी वस्तु को खरीदने के लिए प्रत्येक व्यक्ति गुणवत्तायुक्त वस्तुओं का आग्रही है । परंतु यही मानव स्वयं के माध्यम से होने वाले सर्जन को गुणवान बनाने के लिए चिंतित है ? श्रेष्ठ संतानप्राप्ति हेतु युगल को भी श्रेष्ठतम बनना पडेगा । प्राचीन भारतीय समाज में युगल संतति के सर्जन को ईश्वरीय कार्य समझकर गुणवान संतान के लिए तप करते थे । श्रेष्ठ संतान प्राप्त करने के लिए मनु एवं शतरूपा द्वारा की गई तपश्चर्या सर्वविदित है । परंतु वर्तमान समय में पति-पत्नी बालक क्यों चाहते है इसका उद्देश्य स्पष्ट नहीं है अथवा है ही नहीं । प्रजोत्पत्ति को जीवन का एक आवश्यक कार्य समझकर पूर्ण करना एवं संतान उत्पन्न करना ऐसे सीमित अर्थ में सिमटकर रह गया है । प्रजोत्पत्ति की सम्पूर्ण क्रिया अन्नमय एवं प्राणमयकोश तक सीमित होकर रह गई है । परंतु वास्तव में मनुष्य द्वारा होने वाली यह क्रिया आनंदमयकोश की अवस्था में होती है इसलिए इसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण के संदर्भ में विचार करने के लिए यह लेख प्रस्तुत किया जा रहा है ।

आध्यात्मिक -

आत्मा संबंधी, जीवात्मा के संदर्भ में ।

आध्यात्मिक उत्तरदायित्व -

जीवात्मा की चेतना के ऊर्ध्वीकरण के संदर्भ में उत्तरदायित्व निभाना ।

ISSN : xxxx-xxxx
Volume-1, Issues: 1, April-June, 2020

संस्कार-प्रक्रिया :

व्यक्ति पंचमहाभूतों के सम्पर्क द्वारा ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, भावनाओं, संवेदनाओं एवं अंतःकरण द्वारा जो भी अनुभव प्राप्त करता है उसकी छाप स्मृति के रूप में चित्त पर अंकित हो जाती है । चित्त पर अंकित इन अनुभवों को संस्कार कहा जाता है । संस्कार का अर्थ है मनुष्य की चेतना का आंतरिक सत्त्व । चित्त पर अनेक कार्यों, अनुभवों एवं वातावरण का प्रभाव पडता है । जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अर्थात् शरीर एवं चेतना का संबंध विच्छेद हो जाता है तब शरीर नष्ट हो जाता है । किंतु चित्त पर अंकित छाप ज्यों की त्यों रहती है । उदाहरण के तौर पर कम्प्युटर बदल जाता है हार्डडिस्क वही रहती है । हार्डडिस्क को फोर्मेट करने से उसमें मौजूद जानकारी नष्ट हो जाती है परंतु यह जानकारी पूर्णरूप से नष्ट नहीं होती है बल्कि बिंदु के रूप में हार्डडिस्क में मौजूद होती है । यह बिंदु के रूप में मौजूद जानकारी निष्णात टेक्निशियन द्वारा पुनःप्राप्त की जा सकती है । इसी प्रकार पूर्वजन्म के संस्कार चित्त पर बिंदु के रूप में होते है । व्यक्ति का जब जन्म होता है तब वह उसकी पूर्वजन्म की चेतना के साथ जन्म लेता है अर्थात् पूर्वजन्म में चित्त पर अंकित संस्कारों की छाप के साथ चेतना नया शरीर धारण करती है । व्यक्ति को जन्म के बाद जिस प्रकार का वातावरण मिलता है उसके अनुसार पूर्वजन्म के संस्कार प्रकट होते है ।

३. श्रेष्ठ संतान के निर्माण में माता-पिता का उत्तरदायित्व

भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार का अत्यधिक महत्त्व है । विवाह संस्कार के माध्यम से समाज ने पुरूष एवं स्त्री को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व प्रदान किया है । प्रजोत्पत्ति के माध्यम से समाज की आवश्यकता के अनुसार समाज के हित में श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करके समाज के ऋण से मुक्त होने का उत्तरदायित्व प्रत्येक पति-पत्नी का है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक माता-पिता की कामना होती है कि उसका बालक श्रेष्ठ हो । स्वयं की संतान श्रेष्ठ गुणों वाली, स्वस्थ, संस्कारी, हिम्मतवर बने इस हेतु प्रत्येक माता-पिता बालक के जन्म के बाद अत्यधिक ध्यान रखते हैं, किंतु बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया आयुर्वेद के अनुसार माता-पिता जब बालक की कामना व्यक्त करते हैं तभी से शुरू हो जाती है । श्रेष्ठ संतानप्राप्ति की आवश्यक शर्त है - सर्व प्रथम माता-पिता श्रेष्ठ बनें । माता-पिता बालक में जिस प्रकार के गुणों की अपेक्षा रखते हैं उसी प्रकार के गुणों का विकास माता-पिता स्वयं में करे । सभी माता-पिता चाहते हैं कि जब वे इस संसार को छोडकर जाएँ तब तक उसकी संतान की सभी व्यवस्थाएँ - घर, धन, व्यवसाय आदि सुव्यवस्थित रूप में हो जाए । बहुत कम माता-पिता ऐसे होंगें जो संस्कारों की धरोहर स्वयं के संतानों को देने के प्रति जागरूक होंगे । क्या माता-पिता

Editors : *Dr. Prashant Patel, Dr. Nimish Vasoya*
Published by : Children's University, Gandhinagar

का उत्तरदायित्व संतान का अच्छी तरह लालन-पालन करना, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदि तक ही सीमित है ? या फिर ईश्वरीय चेतना के अवतरण - सर्जन का उद्देश्य माता - पिता के माध्यम से जीवन के अंतिम ध्येय को प्राप्त करना भी है ? अध्यात्म के सिद्धांत के अनुसार माता-पिता की चेतना का स्तर जितना ऊँचा होगा उतनी ही उच्च चेतनायुक्त जीवात्मा उन्हें माता-पिता के रूप में पसंद करेगी । श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति हेतु माता-पिता को व्यक्तित्व के प्रत्येक स्तर पर उत्तरदायित्व निभाना है । आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार इस उत्तरदायित्व के निर्वाह हेतु युगल को गर्भाधान के पूर्व कम से कम तीन माह पहले से तैयारी करनी चाहिए । माता-पिता द्वारा पंचकोशात्मक व्यक्तित्व के प्रशिक्षण एवं उत्तरदायित्व के संदर्भ में चर्चा की जा रही है ।

(१) शारीरिक स्तर पर उत्तरदायित्व

पंचकोश में शरीर सबसे स्थूल है किंतु स्थूल होने के कारण उसकी अवगणना करना या उसका महत्त्व कम आंकना बिल्कुल भी उचित नहीं है । कोई उच्च आध्यात्मिक चेतना धारण करने वाला जीवात्मा उच्च आध्यात्मिक चेतना धारण करने वाले माता-पिता को पसंद करता है एवं यदि माता का शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर हो तो जीवात्मा मानवजीवन के अंतिम ध्येय तक पहुंचने में बाधा महसूस करता है । इसलिए माता-पिता का उत्तरदायित्व है कि संतान को स्वस्थ देह प्रदान करने के लिए स्वयं शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनें । इस हेतु प्रत्येक माता-पिता को कुछ बिंदुओं के संदर्भ में विचार करना चाहिए ।

(अ) आहार - युगल को उत्तम स्वास्थ्य हेतु योग्य पोषक आहार लेना चाहिये । आहार के अधिकांश भाग के पाचन से शुक्र धातु निर्मित हो ऐसा आहार पसंद करना चाहिए । किसी भी व्यक्ति में आहार के पाचन से रस, रस के पाचन से रक्त, रक्त से पाचन के क्रमशः मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं बाद में शुक्र धातु (Reproductive cells)का निर्माण होता है । शरीर में जब शुक्र धातु की अधिकता होती है तब वह क्रमशः ओज एवं तेज में रूपांतरित हो जाता है । ग्रहण किए हुए आहार की अंतिम परिणती शुक्र धातु है । अर्थात् योग्य एवं सात्त्विक आहार एवं उसके अधिकांश भाग के पाचन से योग्य एवं सात्त्विक शुक्र धातु के निर्माण से तेजस्वी संतान की प्राप्ति होती है ।

इसके अतिरिक्त युगल जो भी आहार ग्रहण करता है वह शुद्ध एवं स्वच्छ होना चाहिए । आहार की शुद्धता उसके आर्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भी की जानी चाहिये । अर्थात् युगल आहार की प्राप्ति हेतु जो अर्थोपार्जन करता है वह अर्थोपार्जन भी शुद्ध रूप से हो यह

ISSN : xxxx-xxxx
Volume-1, Issues: 1, April-June, 2020

आवश्यक है । अतिरिक्त अर्थोपार्जन में से यदि दस प्रतिशत अर्थ दान दिया जाए तो उसमें से प्राप्त आहार शुद्ध आहार कहलाता है ।

(ब) ब्रह्मचर्य – ब्रह्मचर्य के पालन से युगल में तीव्र श्रद्धा एवं आस्तिकता उत्पन्न होती है । इसके अतिरिक्त आहार के पाचन से शुक्र धातु निर्मित होने में तीन माह का समय लगता है । इसलिए उत्तम आहार से उत्तम शुक्र प्राप्त करने के लिए युगल को तीन मास का ब्रह्मचर्य रखना चाहिए ।

(क) शारीरिक शुद्धि – गर्भाधान के पूर्व पंचकर्म करने से शारीरिक शुद्धि के माध्यम से वंशानुगत रोगों को दूर किया जा सकता है । निष्णात आयुर्वेदाचार्य के अभाव में उपवास एवं संसर्जनक्रम का पालन करके भी देहशुद्धि की जा सकती है ।

(ड) रजस्वला – शुक्र के उत्तम अंकुरण के लिए अंडकोश की शुद्धता भी अत्यावश्यक है । सामान्य स्थिति में स्त्री में मासिक चक्र २८ दिन में पूर्ण होता है । २८ दिन का यह चक्र स्वाभाविक एवं तनाव रहित होना चाहिए । किसी भी प्रकार का दर्द नहीं होना चाहिए यह स्थिति श्रेष्ठ होती है ।

(ई) शारीरिक श्रम – शरीर स्वस्थ रहे इस हेतु युगल को आवश्यक शारीरिक श्रम, कसरत, व्यायाम आदि करना चाहिए ।

(र) प्राण के स्तर पर उत्तरदायित्व

आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन इन चारों क्रियाओं के संचालन एवं नियंत्रण का केन्द्रबिंदु प्राण है । मनुष्य एवं प्राणी में प्राण समान रूप से कार्य करता है । किंतु पंचकोश की जागरूकता के कारण मनुष्य प्राणी से अलग है ।

मनुष्य स्वयं की पांच इन्द्रियों के माध्यम से जो भी महसूस करता है या कार्य करता है उससे प्राण क्रियाशील होता है । अर्थात् प्राण की गति बाहर की ओर है इसलिए प्राण के प्रशिक्षण हेतु इन्द्रियों का प्रशिक्षण भी आवश्यक है । प्राण का प्रशिक्षण कठिन है क्योंकि बाह्य जगत में घटने वाली घटनाएं पंच इन्द्रियों के माध्यम से कैसे एवं कितनी ग्रहण होती हैं यह बात महत्त्वपूर्ण है । यदि प्राण में प्रण शक्ति जागृत हो तो प्राण का प्रशिक्षण करना सरल है ।

प्राण के प्रशिक्षण हेतु इन्द्रियों को इस तरह प्रशिक्षित करना चाहिए कि वह किसी भी नकारात्मक संवेदनाओं को ग्रहण न करें । सकारात्मक बातें देखना, सुनना, ग्रहण करना आदि बातों के लिए इन्द्रियों को प्रशिक्षित करना चाहिये । इस हेतु प्राणायाम का आधार लेना चाहिये । प्राणायाम से प्राणशक्ति जागृत करके इन्द्रियों की क्षमता में भी वृद्धि करके तेजस्वी संतान प्राप्त कर सकते हैं । प्राणायाम के माध्यम से प्राणमयकोश का विकास एवं शुद्धि दोनो संभव है ।

Editors : *Dr. Prashant Patel, Dr. Nimish Vasoya*
Published by : Children's University, Gandhinagar

ISSN : xxxx-xxxx
Volume-1, Issues: 1, April-June, 2020

(३) मन के स्तर पर उत्तरदायित्व

मन में उत्पन्न होने वाले विचार, भावनाओं एवं संवेदनाओं पर नियंत्रण प्राप्त करना मन की तपश्चर्या है । अनिच्छनीय विचारों को प्रवेश न करने देना एवं प्रवेशित विचारों को बाहर निकालने की शक्ति विकसित करनी चाहिए । समान एवं विपरीत परिस्थिति में नियंत्रण रखने के लिए योगाभ्यास आवश्यक है । मन की गति अत्यधिक तीव्र होने से मन में सकारात्मक या नकारात्मक विचारों की शृंखला बनती रहती है । यह विचार व्यक्ति के हावभाव एवं वर्तन में प्रकट होते हैं । विचारों की गति में नियंत्रण रखने के लिए योगाभ्यास के उपरांत ध्यान उपयोगी है । शरूआत में मन में उत्पन्न होने वाले विचारों का मात्र निरीक्षण करना होता है । बाद में धीरे - धीरे इन विचारों की तीव्रता एवं मात्रा कम होने से मन शांत होने लगता है । और एक स्थिति ऐसी उत्पन्न होती है कि मन में कोई भी विचार नहीं रहता है । शुरूआत में विचारशून्यता की स्थिति सेकंडों में हो सकती है परंतु प्रतिदिन के अभ्यास के बाद समयावधि बठती जाती है । ध्यान द्वारा आवेगों के शांत होने से व्यक्ति सदैव आनंदित रहता है । यही मन की तपश्चर्या है । इसके अतिरिक्त आवश्यकता न हो तो न बोलना, स्वयं पर नियंत्रण रखना, मन में शुद्ध भावनाएँ रखना भी मन की तपश्चर्या है । ये सभी बातें प्रतिदिन घ्यान करने से स्वतः ही नियंत्रित होती है । उसके बाद बाह्य प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं रहती है । मन की शक्ति अत्यधिक है यदि युगल इस शक्ति के उपयोग की कला सीख ले तो स्वयं की चेतना एवं आने वाले बालक की चेतना की उर्ध्वीकरण की प्रक्रिया अत्यंत सरल बन सकती है ।

(४) बुद्धि के स्तर पर उत्तरदायित्व

बुद्धि के अनेक कार्य हैं । बुद्धि पूर्णरूप से सक्रिय न होने के कारण उसका सम्पूर्ण उपयोग मनुष्य नहीं कर सकता है । सामान्य जीवन में बुद्धि, मन के नियंत्रण में नियंत्रित होकर निर्णय लेती है । अर्थात् वास्तव में लिया गया निर्णय बुद्धि आधारित नहीं, मन आधारित होता है । बुद्धि के अधिकतम विकास के लिए युगल को प्रयत्न करना चाहिए, जिससे बालक में उच्च बुद्धिशक्ति माता-पिता की ओर से परंपरागत रूप में मिल सके । इस हेतु युगल को कठिन विषयों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए । उदाहरण के तौर पर विज्ञान में रूचि रखने वाले पति को कला एवं कला में रूचि रखने वाली पत्नी को विज्ञान के विविध पक्षों का गहराई से अध्ययन करके एक दूसरे के साथ चर्चा करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त बुद्धि के विविध गुणों एकाग्रता, स्मरणशक्ति, अवलोकन, ग्रहणशीलता, निर्णयशक्ति, समस्या-समाधान, विवेक एवं समझ विकसित हो ऐसे प्रयत्न करने चाहिए । युगल बुद्धि के विविध गुणों को विकसित करने की ओर ध्यान नहीं देगा तो बुद्धि मन की ओर गति करके जीवन के अंतिम लक्ष्य से विमुख हो जाएगी ।

ISSN : xxxx-xxxx
Volume-1, Issues: 1, April-June, 2020

(५) आध्यात्मिक स्तर पर उत्तरदायित्व

अध्यात्म मानव का आंतरिक परिवर्तन करता है । योग एवं ध्यान के द्वारा व्यक्ति में जो आंतरिक परिवर्तन आता है उसके द्वारा उसमें प्रेम, आनंद, ईश्वरभक्ति, करुणा, शुभभाव, निर्भयता, निःस्वार्थ सेवाकार्य, आत्मविश्वास, एकाग्रता, अनासक्ति आदि जैसी भावनाएं प्रकट होती हैं । व्यक्ति वैश्विक चेतना के प्रति कृतज्ञता का भाव महसूस करता है । ईश्वरीय चेतना के विस्तृतीकरण के माध्यम के रूप में युगल श्रेष्ठ सर्जन का आनंद प्राप्त करता है । युगल की आध्यात्मिक चेतना के उर्ध्वीकरण में प्रतिदिन प्रार्थना, ध्यान, श्लोक, मंत्र आदि उपयोगी बन सकते है । इसके अतिरिक्त गर्भाधान संस्कार करने के बाद ही गर्भाधान की प्रक्रिया करनी चाहिए । संस्कार शारीरिक एवं मानसिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति, आनंद एवं शांति के लिए अत्यंत आवश्यक है । गर्भाधान के लिए समागम करते समय युगल ईश्वरीय आराधना में रत बने तो श्रेष्ठ संतान प्राप्त करना सरल बन जाता है । इस स्थिति में समागम मात्र शारीरिक क्रिया न रहकर प्राणमयकोश की ऊर्जा का उर्ध्वीकरण आनंदमयकोश तक होता है । समागम की क्रिया के समय माता-पिता के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विचारों, क्रियाओं एवं भावनाओं का प्रभाव आने वाले बालक पर पडता है । अतः माता-पिता को चाहिए कि पंचकोश का संतुलन सदैव बनाये रखें ।

सारांश

उपरोक्त बातों से स्पष्ट होता है कि माता-पिता बनना अत्यंत जागरूकतायुक्त कार्य है । आने वाला बालक स्वयं की पूर्वजन्म की चेतना का जो स्तर लेकर माता के गर्भ में प्रवेश करता है उसकी चेतना का वह स्तर बनाए रखना एवं उस चेतना के उर्ध्वीकरण हेतु वर्तमान जन्म में वातावरण निर्मित करना एवं प्रदान करना भी अत्यधिक आवश्यक है । इस प्रकार की जागरूकता के अभाव में बालक की चेतना का स्तर निम्न होने की संभावना रहती है । इसलिए युगल को निरंतर जागृत एवं जागरूकतापूर्वक स्वयं की एवं बालक की आध्यात्मिक चेतना के उर्ध्वीकरण हेतु प्रयत्नशील रहकर मानवजीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने की साधना करनी चाहिए वही माता-पिता का आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है ।

संदर्भ साहित्य :-

१. अधिजनन शास्त्र (जनन, संगोपन, संस्करण विषयक संदर्भ ग्रंथ) : (२०१०), अहमदाबाद, पुनरूत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट

Editors : *Dr. Prashant Patel, Dr. Nimish Vasoya*
Published by : Children's University, Gandhinagar

२. काटदरे इन्दुमतिबहन, (२०१५) : गृहस्थाश्रमी का समाजधर्म (समाजधारणा विषयक युगानुरूप व्यावहारिक चिंतन, अहमदाबाद, पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट

३. जोशी, अर्केश. ए (२०१४) : गर्भसंहिता भाग – १, बरोडा, सोनार्क प्रकाशन

४. जोशी, अर्केश. ए (२०१५) : गर्भसंहिता भाग – २, बरोडा, सोनार्क प्रकाशन

५. जोशी, अर्केश. ए (२०१४) : गर्भसंहिता भाग – ३, बरोडा, सोनार्क प्रकाशन

Children's University
Every Child matters
तेजस्वी बालक : तेजस्वी भारत